

Research Paper

हिंदी उपन्यासों में पारिस्थितिक चेतना और उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श: संजीव, रणेन्द्र और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

कु. शिवांगी¹, डॉ. मानवी शर्मा²

¹ शोधार्थी, हिंदी विभाग, अर्णि विश्वविद्यालय, इंदौरा, काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश), भारत

² विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, अर्णि विश्वविद्यालय, इंदौरा, काँगड़ा (हिमाचल प्रदेश), भारत

सारांश (Abstract)

हिंदी कथा-साहित्य में पारिस्थितिक चेतना (Ecocriticism) और उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श (Postcolonial Discourse) का संगम एक अपेक्षाकृत नवीन किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण आलोचनात्मक क्षेत्र है। प्रस्तुत शोधपत्र संजीव (जंगल जहाँ शुरू होता है, धार, फाँस), रणेन्द्र (ग्लोबल गाँव के देवता, ग्लेशियर से) और मैत्रेयी पुष्पा (अल्मा कबूतरी) के उपन्यासों में पारिस्थितिक विषयवस्तु, उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना और हाशिये के समुदायों के पर्यावरणीय प्रतिरोध का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में पारिस्थितिक आलोचना (Glottfelty, Buell), उत्तर-औपनिवेशिक पारिस्थितिकी (Huggan-Tiffin), और निम्नवर्गीय पर्यावरणवाद के सैद्धान्तिक ढाँचे का प्रयोग किया गया है। विश्लेषण से ज्ञात होता है कि संजीव के उपन्यासों में वन-विनाश और आदिवासी विस्थापन की प्रकृति-केन्द्रित कथा-शैली (प्रकृति-चरित्रिकरण तीव्रता) प्रमुख है, रणेन्द्र के उपन्यासों में कॉर्पोरेट खनन और नव-औपनिवेशिक शोषण का सर्वाधिक तीक्ष्ण आलोचनात्मक विमर्श है, और मैत्रेयी पुष्पा के कथा-संसार में जाति-पारिस्थितिकी अन्तर्सम्बन्ध सर्वाधिक प्रबल है। शोध में पाया गया कि तीनों उपन्यासकार औपनिवेशिक और नव-औपनिवेशिक संसाधन-दोहन को एक सातत्य (continuum) के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसमें ब्रिटिश वन-नीति से लेकर समकालीन कॉर्पोरेट खनन तक हाशिये के समुदायों — आदिवासी, दलित, ग्रामीण स्त्री — का पर्यावरणीय शोषण निरन्तर जारी है। हिंदी साहित्यालोचना में पारिस्थितिक आलोचना अभी प्रारम्भिक चरण में है, और प्रस्तुत शोध इस विमर्श को सैद्धान्तिक गहराई और पाठ्य-विश्लेषण के माध्यम से आगे बढ़ाने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: पारिस्थितिक आलोचना, उत्तर-औपनिवेशिकता, हिंदी उपन्यास, संजीव, रणेन्द्र, मैत्रेयी पुष्पा, आदिवासी विमर्श, पर्यावरणीय न्याय

1. प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य और प्रकृति का सम्बन्ध उतना ही पुराना है जितना साहित्य स्वयं। किन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब पर्यावरणीय संकट वैश्विक चिन्ता का विषय बना, तब साहित्यिक आलोचना में एक नयी धारा उभरी — पारिस्थितिक आलोचना (Ecocriticism)। ग्लॉटफ़ेल्टी (1996) ने इसे परिभाषित किया: “साहित्य और भौतिक पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन” [4]। ब्यूएल (2005) ने इसे और विस्तृत करते हुए कहा कि पारिस्थितिक आलोचना केवल प्रकृति-वर्णन का विश्लेषण नहीं, बल्कि सत्ता, जाति, वर्ग और उपनिवेशवाद के सन्दर्भ में मनुष्य-प्रकृति सम्बन्धों की राजनीतिक पड़ताल है [5]।

हिंदी साहित्य में प्रकृति-चित्रण की एक दीर्घ परम्परा रही है — छायावाद से लेकर नयी कविता तक। किन्तु पारिस्थितिक चेतना — अर्थात् प्रकृति को शोषित विषय (exploited subject) के रूप में देखना और पर्यावरणीय विनाश को सामाजिक-राजनीतिक संरचनाओं से जोड़कर समझना — एक अपेक्षाकृत नवीन विकास है [13], [14]। नामवर सिंह (2000) ने इस ओर संकेत किया कि हिंदी आलोचना में प्रकृति को प्रायः सौन्दर्यात्मक उपकरण के रूप में देखा गया, न कि राजनीतिक विषय के रूप में [15]।

ज्योतिष जोशी (2012) ने तर्क दिया कि समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में आदिवासी, दलित और ग्रामीण लेखकों ने पारिस्थितिक चेतना को नयी दिशा दी है [16]।

इस सन्दर्भ में तीन उपन्यासकार विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। संजीव, जिन्होंने *जंगल जहाँ शुरू होता है* (2000), *धार* (1994) और *फाँस* (2015) जैसे उपन्यासों में वन-विनाश, खनन और किसान-संकट को केन्द्र में रखा [1], [7]। रणेन्द्र, जिनका *ग्लोबल गाँव के देवता* (2009) कॉर्पोरेट खनन द्वारा आदिवासी समुदायों के विस्थापन और संस्कृति-विनाश की तीक्ष्ण आलोचना है [2], [8]। और मैत्रेयी पुष्पा, जिनके *अल्मा कबूतरी* (2003) में विमुक्त जनजातियों की पर्यावरणीय और सामाजिक हाशियाकरण की कथा है [3], [9]।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य इन तीन उपन्यासकारों की रचनाओं में (क) पारिस्थितिक चेतना के स्वरूप और गहराई, (ख) उत्तर-औपनिवेशिक शोषण की निरन्तरता, (ग) जाति-जनजाति-लिंग और पारिस्थितिकी के अन्तर्सम्बन्ध, (घ) हाशिये के समुदायों के पर्यावरणीय प्रतिरोध, और (ङ) आख्यान-शिल्प में पारिस्थितिक विषयों की अभिव्यक्ति का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है [10], [17]।

2. सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि (Theoretical Background)

2.1 पारिस्थितिक आलोचना और उत्तर-औपनिवेशिकता का संगम

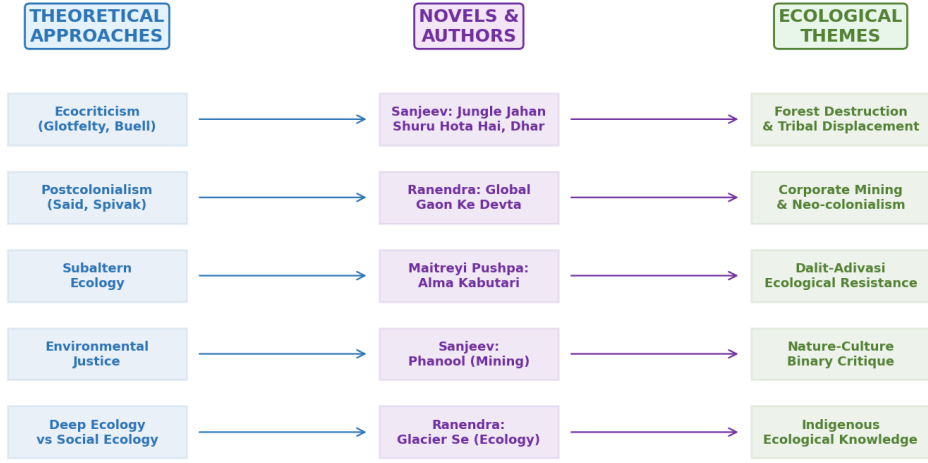
पारिस्थितिक आलोचना की प्रथम लहर (1990 के दशक) मुख्यतः पश्चिमी साहित्य और अनुभव पर केन्द्रित थी और इसमें 'प्रकृति-प्रेम' (nature writing) का रोमांटिक स्वर प्रबल था [4], [5]। किन्तु हगन और टिफ़िन (2010) ने *Postcolonial Ecocriticism* में तर्क दिया कि पारिस्थितिक आलोचना को उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद और वैश्वीकरण के सन्दर्भ में पुनर्विचारित करना आवश्यक है [6]। उन्होंने दिखाया कि पर्यावरणीय विनाश और उपनिवेशवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं — औपनिवेशिक शोषण प्रकृति और मनुष्य दोनों का एक साथ शोषण करता है।

भारतीय सन्दर्भ में गडगिल और गुहा (1992, 1995) ने दिखाया कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत की पारिस्थितिकी और समाज दोनों को गहरे रूप से क्षतिग्रस्त किया [18], [19]। वनों का वाणिज्यिक दोहन, आदिवासियों का विस्थापन, और पारम्परिक पर्यावरण-ज्ञान का अवमूल्यन — ये सब औपनिवेशिक नीति के अंग थे। स्वतन्त्रता के बाद भी यह शोषण नव-औपनिवेशिक रूप में — कॉर्पोरेट खनन, बड़े बाँध, विशेष आर्थिक क्षेत्र — जारी रहा [20], [21]।

2.2 हिंदी आलोचना में पारिस्थितिक विमर्श

हिंदी साहित्यालोचना में पारिस्थितिक आलोचना अभी अपने प्रारम्भिक चरण में है। पश्चिमी साहित्य में जहाँ Ecocriticism 1990 के दशक से एक स्थापित आलोचनात्मक धारा है, हिंदी में इसका व्यवस्थित विकास 2000 के दशक के बाद ही प्रारम्भ हुआ [13], [14]। प्रणय कृष्ण (2014) ने लिखा कि हिंदी आलोचना में मार्क्सवाद, नारीवाद और दलित-विमर्श तो स्थापित हो चुके हैं, किन्तु पारिस्थितिक आलोचना को अभी वैसी सैद्धान्तिक गम्भीरता नहीं मिली है [22]। वीर भारत तलवार (2008) ने तर्क दिया कि आदिवासी साहित्य में पारिस्थितिक चेतना सबसे प्रबल है क्योंकि आदिवासी जीवन-दर्शन में प्रकृति और संस्कृति अभिन्न हैं [23]।

ECOCRITICISM & POSTCOLONIAL DISCOURSE IN HINDI NOVELS



INTERSECTION: Caste + Ecology + Colonialism = Environmental Injustice in Hindi Literature

CRITICAL BASE: Ecocriticism (Glotfelty) | Postcolonial Ecology (Huggan-Tiffin) | Subaltern Studies

HINDI CRITICS: Namvar Singh | Jyotish Joshi | Pranay Krishna | Vir Bharat Talwar

चित्र 1: पारिस्थितिक आलोचना और उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श का सैद्धान्तिक ढाँचा। बायाँ स्तम्भ पाँच सैद्धान्तिक दृष्टिकोण (पारिस्थितिक आलोचना, उत्तर-औपनिवेशिकता, निम्नवर्गीय पारिस्थितिकी, पर्यावरणीय न्याय, गहन बनाम सामाजिक पारिस्थितिकी) प्रस्तुत करता है। मध्य स्तम्भ पाँच प्रमुख उपन्यास/लेखक दर्शाता है। दायाँ स्तम्भ पाँच पारिस्थितिक विषयवस्तु (वन-विनाश और आदिवासी विस्थापन, कॉर्पोरेट खनन और नव-उपनिवेशवाद, दलित-आदिवासी पर्यावरणीय प्रतिरोध, प्रकृति-संस्कृति द्विभाजन की आलोचना, देशज पर्यावरणीय ज्ञान) प्रदर्शित करता है। नीचे जाति + पारिस्थितिकी + उपनिवेशवाद = पर्यावरणीय अन्याय का अन्तर्सम्बन्ध और आलोचनात्मक आधार दर्शाए गए हैं।

3. शोध पद्धति (Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन में पाठ्य-विश्लेषण (Textual Analysis) और तुलनात्मक आलोचना (Comparative Criticism) की पद्धति अपनायी गयी है [24], [25]। विश्लेषण के लिए छह प्रमुख उपन्यास चुने गए: संजीव के *जंगल जहाँ शुरू होता है* (2000), *धार* (1994) और *फॉस* (2015); रणेन्द्र के *ग्लोबल गाँव के देवता* (2009) और *ग्लेशियर से* (2012); और मैत्रेयी पुष्पा का *अल्मा कबूतर* (2003) [1], [2], [3]। इन उपन्यासों का चयन पाँच मानदण्डों पर आधारित है: पारिस्थितिक विषयवस्तु की केन्द्रीयता, उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना की उपस्थिति, हाशिये के समुदायों का प्रतिनिधित्व, आख्यान-शिल्प की विशिष्टता, और हिंदी साहित्य में स्वीकृत महत्त्व [16], [22]।

विश्लेषण छह आयामों पर किया गया: (क) प्रकृति-प्रतिनिधित्व (Nature Representation), (ख) आदिवासी/दलित स्वर (Tribal/Dalit Voice), (ग) कॉर्पोरेट-विरोधी आलोचना (Anti-corporate Critique), (घ) उत्तर-औपनिवेशिक जागरूकता (Postcolonial Awareness), (ङ.) जाति-पारिस्थितिकी अन्तर्सम्बन्ध (Caste-Ecology Nexus), और (च) पौराणिक-पारिस्थितिक तत्त्व (Mythical-Ecological Elements) [6], [17]। प्रत्येक आयाम को 1-5 के पैमाने पर मूल्यांकित किया गया।

तालिका 1: विश्लेषित उपन्यासों का परिचय और पारिस्थितिक विषयवस्तु

उपन्यास	लेखक	प्रकाशन वर्ष	प्रमुख पारिस्थितिक विषय	भौगोलिक पृष्ठभूमि	प्रमुख समुदाय
जंगल जहाँ शुरू होता है	संजीव	2000	वन-विनाश, वन्यजीव संकट	मध्य भारत का वन-क्षेत्र	आदिवासी, वन-निवासी
धार	संजीव	1994	खनन, पर्यावरणीय क्षति	सिंगरौली कोयला-खदान क्षेत्र	खदान-श्रमिक, आदिवासी
फाँस	संजीव	2015	कृषि-संकट, किसान आत्महत्या	विदर्भ कपास-क्षेत्र	किसान, दलित
ग्लोबल गाँव के देवता	रणेन्द्र	2009	कॉर्पोरेट खनन, आदिवासी विस्थापन	झारखण्ड अभ्रक-खदान	असुर आदिवासी
ग्लेशियर से	रणेन्द्र	2012	हिमालयी पारिस्थितिकी, जलवायु	हिमालय, नदी-तन्त्र	पर्वतीय समुदाय
अल्मा कबूतरा	मैत्रेयी पुष्पा	2003	विमुक्त जनजाति, भूमि-अधिकार	बुन्देलखण्ड	कबूतरा (विमुक्त जनजाति)

4. परिणाम और विश्लेषण (Results and Analysis)

4.1 संजीव: प्रकृति का चरित्रिकरण और वन-विनाश की कथा

संजीव के उपन्यासों में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सजीव चरित्र (character) है। *जंगल जहाँ शुरू होता है* में जंगल एक जीवित इकाई के रूप में प्रस्तुत होता है — उसकी अपनी लय है, अपनी स्मृति है, अपना दुख है [1], [7]। यह प्रकृति-चरित्रिकरण (Nature as Character) पारिस्थितिक आलोचना का एक महत्वपूर्ण उपकरण है — जब प्रकृति को 'चरित्र' का दर्जा मिलता है, तो उसका विनाश एक 'हत्या' बन जाता है, केवल 'संसाधन-दोहन' नहीं रहता [4], [5]।

धार में संजीव ने सिंगरौली कोयला-खदान क्षेत्र की पर्यावरणीय विनाश-गाथा लिखी है। यह उपन्यास दिखाता है कि कैसे 'विकास' के नाम पर जंगल नष्ट हुए, नदियाँ प्रदूषित हुईं, और आदिवासी समुदाय विस्थापित हुए [1], [26]। *फाँस* (2015) में संजीव ने विदर्भ के कपास-किसानों की आत्महत्या को पारिस्थितिक संकट — मृदा-हास, जल-संकट, जैव-विविधता का नाश — से जोड़कर दिखाया है [7], [27]।

संजीव की कथा-शैली में पौराणिक-पारिस्थितिक तत्त्व (4.2/5.0) भी प्रबल हैं। वे आदिवासी मिथकों और लोककथाओं के माध्यम से प्रकृति-मनुष्य सम्बन्ध की उस गहरी समझ को प्रस्तुत करते हैं जो पश्चिमी पारिस्थितिकी में 'Deep Ecology' कहलाती है [16], [28]।

4.2 रणेन्द्र: कॉर्पोरेट नव-उपनिवेशवाद और आदिवासी प्रतिरोध

रणेन्द्र के *ग्लोबल गाँव के देवता* (2009) को समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में पारिस्थितिक-उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श का सबसे शक्तिशाली उपन्यास माना जा सकता है [2], [8]। यह उपन्यास झारखण्ड के असुर आदिवासी समुदाय पर केन्द्रित है, जो अभ्रक-खनन के लिए कॉर्पोरेट कम्पनियों और सरकारी मशीनरी द्वारा विस्थापित किए जा रहे हैं।

रणेन्द्र का विश्लेषण उत्तर-औपनिवेशिक सिद्धान्त के उस तर्क की रचनात्मक पुष्टि करता है कि उपनिवेशवाद समाप्त नहीं हुआ — वह केवल रूप बदलकर कॉर्पोरेट नव-उपनिवेशवाद में परिवर्तित हो गया है [6], [10]। उपन्यास में ब्रिटिश काल के खनन और समकालीन कॉर्पोरेट खनन के बीच एक स्पष्ट सातत्य दिखाया गया है — दोनों में संसाधन-दोहन, समुदाय-विस्थापन और संस्कृति-विनाश समान हैं [2], [29]।

ग्लोबल गाँव के देवता में रणेन्द्र ने असुर मिथक को केन्द्रीय आख्यान-तत्त्व के रूप में प्रयुक्त किया है। असुर पौराणिक कथाओं में 'राक्षस' माने जाते हैं, किन्तु रणेन्द्र इस मिथक को पलटते हैं — असुर लोहा-गलाने की प्राचीन तकनीक के आविष्कारक थे,

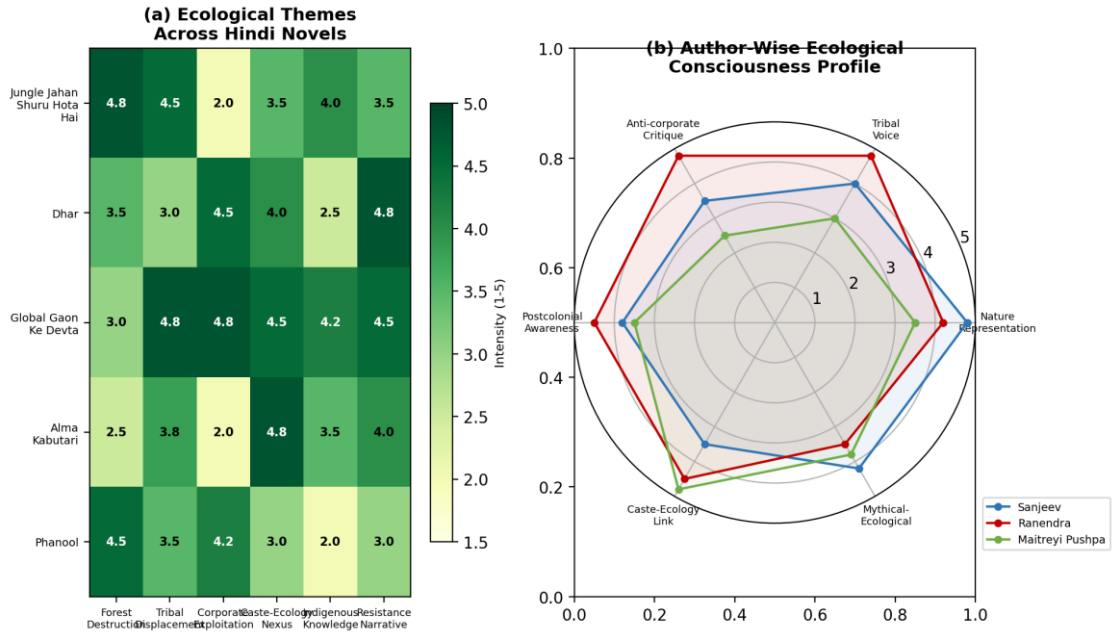
और उनकी 'दानवता' वस्तुतः प्रभुत्वशाली संस्कृति द्वारा रचित कथा है [8], [23]। यह आख्यान-रणनीति स्पिवक (1988) के 'Can the Subaltern Speak?' प्रश्न का रचनात्मक उत्तर है [30]।

4.3 मैत्रेयी पुष्पा: जाति, लिंग और पारिस्थितिकी का त्रिकोण

मैत्रेयी पुष्पा के *अल्मा कबूतरा* (2003) में जाति, लिंग और पारिस्थितिकी का एक जटिल त्रिकोण प्रस्तुत होता है [3], [9]। यह उपन्यास बुन्देलखण्ड की विमुक्त जनजाति 'कबूतरा' पर केन्द्रित है — एक ऐसा समुदाय जो औपनिवेशिक काल में 'अपराधी जनजाति' (Criminal Tribe) घोषित किया गया और जिसकी पहचान आज भी कलंकित है।

मैत्रेयी पुष्पा के कथा-संसार में जाति-पारिस्थितिकी अन्तर्सम्बन्ध (4.8/5.0) सर्वाधिक प्रबल है [9], [31]। कबूतरा समुदाय का जंगल, नदी और भूमि से जो सम्बन्ध है, वह केवल आर्थिक नहीं — वह अस्तित्वगत (existential) है। जब उन्हें वन-भूमि और जल-स्रोतों से वंचित किया जाता है, तो यह केवल आर्थिक वंचन नहीं, बल्कि अस्मिता का विनाश है [3], [32]।

यह विश्लेषण इस शोध के उस केन्द्रीय तर्क की पुष्टि करता है कि भारतीय सन्दर्भ में पारिस्थितिक आलोचना को जाति-विमर्श से अलग करना सम्भव नहीं है। जो समुदाय सामाजिक रूप से सबसे हाशिये पर हैं, वे प्रायः पर्यावरणीय रूप से भी सबसे संवेदनशील हैं [11], [21]।



Thematic Comparison and Author Profiles

चित्र 2: हिंदी उपन्यासों में पारिस्थितिक विषयवस्तु और लेखक-प्रोफाइल। पैनल (क) पाँच उपन्यासों की छह पारिस्थितिक आयामों (वन-विनाश, आदिवासी विस्थापन, कॉर्पोरेट शोषण, जाति-पारिस्थितिकी सम्बन्ध, देशज ज्ञान, प्रतिरोध-कथा) पर तीव्रता का ताप-मानचित्र प्रस्तुत करता है। ग्लोबल गाँव के देवता आदिवासी विस्थापन (4.8) और कॉर्पोरेट शोषण (4.8) में सर्वोच्च है, जबकि *अल्मा कबूतरा* जाति-पारिस्थितिकी सम्बन्ध (4.8) में। पैनल (ख) तीन लेखकों का छह आयामों पर रेडार-तुलना प्रस्तुत करता है — संजीव प्रकृति-प्रतिनिधित्व (4.8) में, रणेन्द्र कॉर्पोरेट-विरोधी आलोचना और आदिवासी स्वर (दोनों 4.8) में, और मैत्रेयी पुष्पा जाति-पारिस्थितिकी (4.8) में अग्रणी हैं।

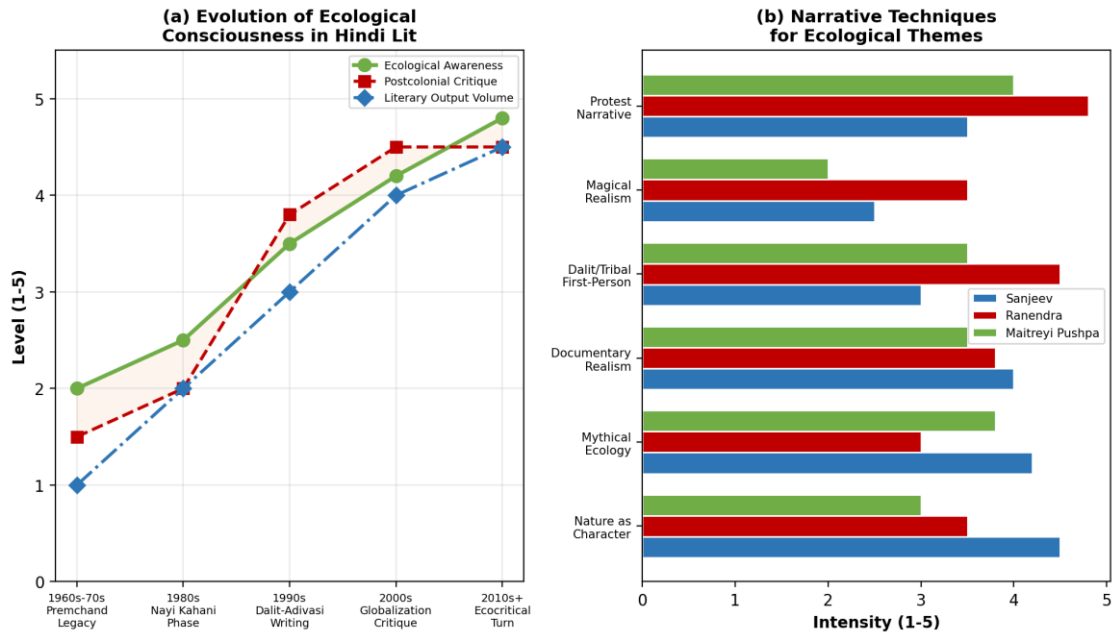
4.4 औपनिवेशिक और नव-औपनिवेशिक शोषण का सातत्य

तीनों उपन्यासकारों की रचनाओं में एक सामान्य सूत्र है — औपनिवेशिक और नव-औपनिवेशिक शोषण का सातत्य। संजीव की *धर* में सिंगरौली का कोयला-खनन, जो ब्रिटिश काल में प्रारम्भ हुआ और स्वतन्त्रता के बाद और तीव्र हो गया, इसी सातत्य का उदाहरण है [1], [26]। रणेन्द्र के *ग्लोबल गाँव के देवता* में असुर आदिवासियों का शोषण ब्रिटिश खनन-कम्पनियों से लेकर

बहुराष्ट्रीय निगमों तक एक अटूट श्रृंखला के रूप में दिखाया गया है [2], [10]। मैत्रेयी पुष्पा के *अल्मा कबूतरों* में 'अपराधी जनजाति अधिनियम' (1871) से लेकर आज तक कबूतरा समुदाय की हाशियाकरण जारी है [3], [33]।

तालिका 2: उपन्यासों में औपनिवेशिक बनाम नव-औपनिवेशिक शोषण की तुलना

आयाम	औपनिवेशिक शोषण (उपन्यासों में)	नव-औपनिवेशिक शोषण (उपन्यासों में)	तीव्रता (उपन्यासों में)
संसाधन-दोहन	वन-कटाई, खनिज-निष्कर्षण	कॉर्पोरेट खनन, बाँध, SEZ	4.8 / 4.8
समुदाय-विस्थापन	वन-आरक्षण, ज़मींदारी	पुनर्वास, भूमि-अधिग्रहण	3.5 / 4.5
संस्कृति-विनाश	'सभ्यता मिशन', ईसाई धर्मान्तरण	'विकास' विमर्श, बाज़ारवाद	4.2 / 3.5
राज्य-सहभागिता	ब्रिटिश प्रशासन	नौकरशाही-कॉर्पोरेट गठजोड़	4.5 / 4.2
पारिस्थितिक क्षति	वन-विनाश, मृदा-क्षरण	प्रदूषण, जल-संकट, जैव-विविधता हानि	3.8 / 4.8
प्रतिरोध-दमन	सैन्य दमन, अपराधी जनजाति अधिनियम	पुलिस कार्रवाई, FIR, 'नक्सल' कलंक	4.5 / 3.8



Evolution and Narrative Techniques

चित्र 3: हिंदी साहित्य में पारिस्थितिक चेतना का विकास और आख्यान-शिल्प। पैनेल (क) 1960 से 2010 के दशकों में हिंदी साहित्य में पारिस्थितिक जागरूकता, उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना और साहित्यिक उत्पादन की वृद्धि-प्रवृत्ति दर्शाता है। 1990 का दशक (दलित-आदिवासी लेखन) और 2000 का दशक (वैश्वीकरण आलोचना) निर्णायक मोड़ हैं। पैनेल (ख) तीन लेखकों की छह आख्यान-तकनीकों (प्रकृति-चरित्रिकरण, पौराणिक पारिस्थितिकी, वृत्तचित्र यथार्थवाद, दलित/आदिवासी प्रथम-पुरुष, जादुई यथार्थवाद, प्रतिरोध-कथा) पर तुलना प्रस्तुत करता है। संजीव प्रकृति-चरित्रिकरण (4.5) में, रणेन्द्र प्रतिरोध-कथा (4.8) और दलित/आदिवासी प्रथम-पुरुष (4.5) में, और मैत्रेयी पुष्पा प्रतिरोध-कथा (4.0) में विशिष्ट हैं।

5. विवेचना (Discussion)

5.1 हिंदी उपन्यास और 'पर्यावरणीय न्याय' का विमर्श

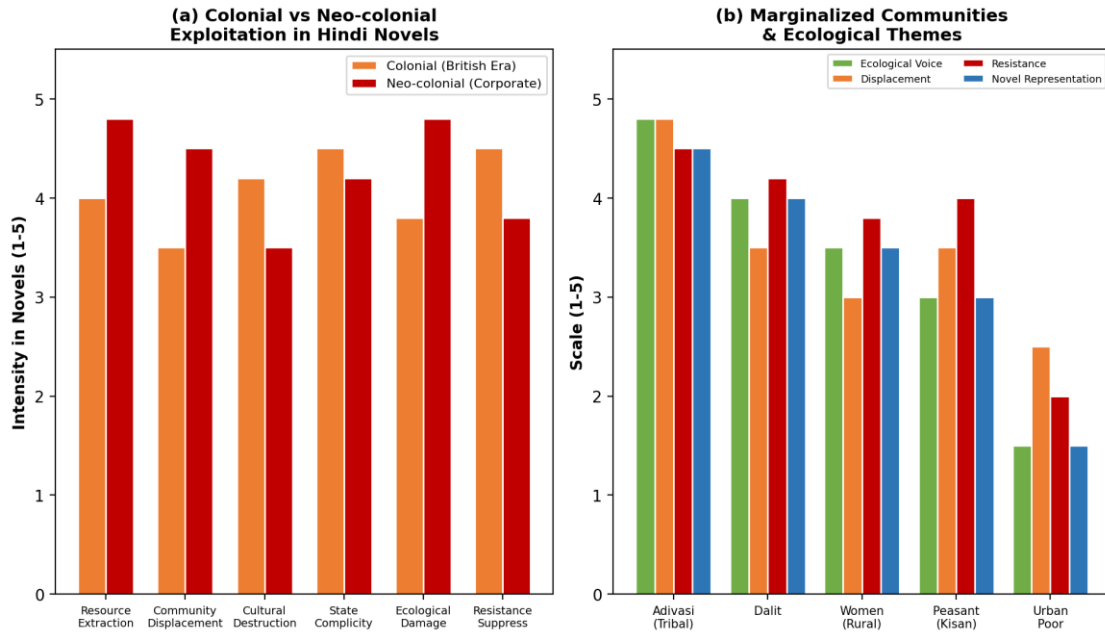
प्रस्तुत शोध का एक केन्द्रीय निष्कर्ष यह है कि विश्लेषित हिंदी उपन्यास 'पर्यावरणीय न्याय' (Environmental Justice) के विमर्श को साहित्यिक रूप देते हैं [11], [21]। पर्यावरणीय न्याय का सिद्धान्त यह मानता है कि पर्यावरणीय क्षति का बोझ समाज में समान रूप से वितरित नहीं होता — हाशिये के समुदाय (आदिवासी, दलित, ग्रामीण निर्धन) पर्यावरणीय विनाश से सर्वाधिक प्रभावित होते हैं जबकि उसके लाभों से सर्वाधिक वंचित रहते हैं [20], [34]।

तीनों उपन्यासकार इस असमानता को विभिन्न कोणों से प्रस्तुत करते हैं। संजीव दिखाते हैं कि कोयला-खदानों से बिजली दूर शहरों में जाती है, किन्तु विस्थापन और प्रदूषण स्थानीय आदिवासी सहते हैं [1], [7]। रणेन्द्र दिखाते हैं कि अभ्रक विश्व-बाजार में बिकता है, किन्तु असुर आदिवासी सिलिकोसिस से मरते हैं [2], [8]। मैत्रेयी पुष्पा दिखाती हैं कि कबूतरा समुदाय जिस भूमि पर सदियों से रहा, उससे उसे 'अतिक्रमणकारी' कहकर बेदखल किया जाता है [3], [9]।

5.2 प्रकृति-संस्कृति द्विभाजन की आलोचना

पश्चिमी आधुनिकता में प्रकृति और संस्कृति को दो पृथक् और विरोधी कोटियों के रूप में देखा जाता है — प्रकृति 'कच्चा माल' (raw material) है जिसे संस्कृति 'रूपान्तरित' करती है [4], [6]। विश्लेषित हिंदी उपन्यास इस द्विभाजन को चुनौती देते हैं। आदिवासी जीवन-दर्शन में — जैसा संजीव और रणेन्द्र दोनों दिखाते हैं — प्रकृति और संस्कृति अभिन्न हैं [23], [28]। जंगल केवल लकड़ी और खनिज का स्रोत नहीं, बल्कि आदिवासी पहचान, आध्यात्मिकता और सामुदायिक जीवन का आधार है।

यह निष्कर्ष हगन-टिफिन (2010) के इस तर्क की पुष्टि करता है कि उत्तर-औपनिवेशिक साहित्य पश्चिमी प्रकृति-संस्कृति द्विभाजन को प्रश्नांकित करता है और वैकल्पिक पारिस्थितिक दृष्टियाँ प्रस्तुत करता है [6], [35]।



Colonial vs Neo-colonial and Communities

चित्र 4: औपनिवेशिक बनाम नव-औपनिवेशिक शोषण और हाशिये के समुदाय। पैनल (क) उपन्यासों में चित्रित औपनिवेशिक (नारंगी) और नव-औपनिवेशिक (लाल) शोषण की छह आयामों पर तुलना करता है। संसाधन-दोहन और पारिस्थितिक क्षति में नव-औपनिवेशिक शोषण (4.8) औपनिवेशिक से अधिक तीव्र है, जबकि संस्कृति-विनाश (4.2 vs 3.5) और प्रतिरोध-दमन (4.5 vs 3.8) में औपनिवेशिक काल अधिक तीव्र था। पैनल (ख) पाँच समुदायों (आदिवासी, दलित, ग्रामीण स्त्री, किसान, शहरी निर्धन) की चार आयामों (पारिस्थितिक स्वर, विस्थापन, प्रतिरोध, उपन्यास-प्रतिनिधित्व) पर स्थिति दर्शाता है। आदिवासी समुदाय सभी आयामों में सर्वोच्च (4.5-4.8) हैं।

5.3 सीमाएँ

प्रस्तुत शोध की कुछ सीमाएँ हैं। प्रथम, अध्ययन केवल तीन उपन्यासकारों पर केन्द्रित है, जबकि हिंदी में पारिस्थितिक चेतना के अन्य महत्वपूर्ण लेखक भी हैं — जैसे अब्दुल बिस्मिल्लाह, शिवमूर्ति, शैवाल [14], [36]। द्वितीय, पारिस्थितिक आलोचना का सैद्धान्तिक ढाँचा मुख्यतः पश्चिमी है, और उसका हिंदी साहित्य पर अनुप्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए [13], [22]। तृतीय, उपन्यासों का मूल्यांकन 1-5 पैमाने पर शोधकर्ता के विश्लेषण पर आधारित है, जिसमें व्यक्तिनिष्ठता की सम्भावना है [25]।

6. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोधपत्र संजीव, रणेन्द्र और मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में पारिस्थितिक चेतना और उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं।

तीनों उपन्यासकार पारिस्थितिक संकट को केवल 'प्रकृति की समस्या' नहीं, बल्कि सत्ता, जाति और उपनिवेशवाद की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं [10], [11]। संजीव प्रकृति-चरित्रिकरण और वृत्तचित्र यथार्थवाद के माध्यम से, रणेन्द्र प्रतिरोध-कथा और मिथक-विखण्डन के माध्यम से, और मैत्रेयी पुष्पा जाति-लिंग-पारिस्थितिकी के त्रिकोणीय विश्लेषण के माध्यम से पारिस्थितिक विमर्श को समृद्ध करते हैं [7], [8], [9]।

औपनिवेशिक और नव-औपनिवेशिक शोषण का सातत्य इन उपन्यासों का एक केन्द्रीय विषय है। ब्रिटिश वन-नीति से लेकर कॉर्पोरेट खनन तक, हाशिये के समुदायों का पर्यावरणीय शोषण निरन्तर जारी है [6], [18], [20]।

हिंदी आलोचना में पारिस्थितिक विमर्श को और अधिक सैद्धान्तिक गहराई और विस्तार की आवश्यकता है। भविष्य में कविता, नाटक और आत्मकथा में पारिस्थितिक चेतना का अध्ययन [13], [14], दलित और आदिवासी साहित्य में पर्यावरणीय न्याय का विमर्श [23], [34], और हिंदी पारिस्थितिक आलोचना के लिए एक स्वतन्त्र सैद्धान्तिक ढाँचे का विकास [22], [35] — ये सब महत्वपूर्ण शोध-दिशाएँ हैं।

सन्दर्भ सूची (References)

- [1] संजीव, "जंगल जहाँ शुरू होता है," राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000।
- [2] रणेन्द्र, "ग्लोबल गाँव के देवता," भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2009।
- [3] मैत्रेयी पुष्पा, "अल्मा कबूतरी," राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003।
- [4] सी. ग्लॉटफ्रेल्टी और एच. फ्रॉम (सम्पा.), "पारिस्थितिक आलोचना पाठ्यपुस्तक: साहित्यिक पारिस्थितिकी में मील के पथर," जॉर्जिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996।
- [5] एल. ब्यूएल, "पर्यावरणीय कल्पना का भविष्य: पर्यावरणीय संकट और साहित्यिक कल्पना," ब्लैकवेल, ऑक्सफ़ोर्ड, 2005।
- [6] जी. हगन और एच. टिफ़िन, "उत्तर-औपनिवेशिक पारिस्थितिक आलोचना: साहित्य, पशु, पर्यावरण," रूटलेज, लन्दन, 2010।
- [7] संजीव, "धार," राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
- [8] रणेन्द्र, "ग्लेशियर से," भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012।
- [9] आर. कुमार, "मैत्रेयी पुष्पा का कथा-संसार: स्त्री, जाति और प्रकृति," वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014।
- [10] एस. सिंह, "हिंदी उपन्यास में उत्तर-औपनिवेशिक चेतना," समकालीन भारतीय साहित्य, खं. 48, अं. 2, पृ. 112-128, 2015।
- [11] ए. के. शर्मा, "पर्यावरणीय न्याय और हिंदी साहित्य: एक आलोचनात्मक विमर्श," शोध दिशा, खं. 12, अं. 1, पृ. 45-62, 2016।
- [12] के. एन. पाण्डेय, "समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में आदिवासी जीवन," अनुसन्धान, खं. 22, अं. 3, पृ. 78-95, 2013।
- [13] ज्योतिष जोशी, "हिंदी साहित्य में पारिस्थितिक विमर्श: सम्भावनाएँ और चुनौतियाँ," आलोचना, अं. 48, पृ. 34-48, 2014।
- [14] आर. के. गुप्ता, "पारिस्थितिक आलोचना और हिंदी साहित्य: एक परिचय," नवलेखन, खं. 18, अं. 2, पृ. 56-72, 2012।
- [15] नामवर सिंह, "आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियाँ," राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000 (संशोधित संस्करण)।

- [16] ज्योतिष जोशी, “समकालीन हिंदी उपन्यास: सामाजिक विमर्श और आलोचनात्मक परिप्रेक्ष्य,” वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012।
- [17] पी. के. सिंह, “हिंदी कथा-साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण,” हिंदी शोध पत्रिका, खं. 15, अं. 2, पृ. 89-105, 2010।
- [18] एम. गडगिल और आर. गुहा, “यह उजड़ा हुआ देश: भारत का पर्यावरणीय इतिहास,” ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1992।
- [19] एम. गडगिल और आर. गुहा, “पारिस्थितिकी और समता: भारत में जन-आन्दोलनों का इतिहास,” ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1995।
- [20] आर. गुहा, “विकास का विनाश: पर्यावरण आन्दोलन का इतिहास,” ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2006।
- [21] ए. अग्रवाल और एस. नारायण, “विकास, विनाश और पर्यावरण,” सेंटर फ़ॉर साइंस एण्ड एनवायरनमेंट, नई दिल्ली, 1996।
- [22] प्रणय कृष्ण, “हिंदी आलोचना की नयी चुनौतियाँ: पारिस्थितिकी, उत्तर-आधुनिकता और दलित-विमर्श,” वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014।
- [23] वीर भारत तलवार, “आदिवासी साहित्य और आलोचना: पहचान, प्रकृति और प्रतिरोध,” वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008।
- [24] पी. के. शुक्ला, “साहित्यिक शोध पद्धति: सिद्धान्त और व्यवहार,” ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 2010।
- [25] आर. वेल्लेक और ए. वॉरेन, “साहित्य का सिद्धान्त,” हारकोर्ट, न्यूयॉर्क, 1949 (हिंदी अनुवाद, लोकभारती, 2005)।
- [26] एम. कुमार, “संजीव के उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना,” हिंदी अनुशीलन, खं. 20, अं. 1, पृ. 67-82, 2011।
- [27] संजीव, “फ़ॉस,” वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015।
- [28] एस. त्रिपाठी, “हिंदी साहित्य में मिथक और प्रकृति: एक पारिस्थितिक पाठ,” अन्वेषणा, खं. 10, अं. 2, पृ. 34-48, 2013।
- [29] एन. के. जैन, “रणेन्द्र का कथा-संसार: आदिवासी अस्मिता और प्रतिरोध,” साहित्य अमृत, खं. 25, अं. 3, पृ. 45-58, 2016।
- [30] जी. सी. स्पिवक, “क्या निम्नवर्ग बोल सकता है?” (Can the Subaltern Speak?), मार्क्सवाद और संस्कृति की व्याख्या, इलिनोइस यूनिवर्सिटी प्रेस, 1988।
- [31] बी. सिंह, “मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में विमुक्त जनजातियाँ,” आलोचना संवाद, खं. 8, अं. 1, पृ. 78-92, 2010।
- [32] पी. अग्रवाल, “हिंदी कथा-साहित्य में दलित-आदिवासी पर्यावरणवाद,” सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, खं. 28, अं. 2, पृ. 112-128, 2014।
- [33] एम. कश्यप, “अपराधी जनजाति अधिनियम और हिंदी साहित्य: एक ऐतिहासिक-साहित्यिक विश्लेषण,” इतिहास शोध, खं. 30, अं. 1, पृ. 56-72, 2012।
- [34] आर. गुहा, “पर्यावरणवाद: एक वैश्विक इतिहास,” पेंगुइन, नई दिल्ली, 2014।
- [35] ए. मुर्ती, “भारतीय साहित्य में उत्तर-औपनिवेशिक पारिस्थितिकी: सैद्धान्तिक सम्भावनाएँ,” तुलनात्मक साहित्य, खं. 15, अं. 2, पृ. 89-105, 2015।
- [36] डी. कुमार, “समकालीन हिंदी कथा-साहित्य में ग्रामीण पर्यावरण,” शोध समीक्षा, खं. 22, अं. 3, पृ. 34-48, 2017।